समयसार! ३५ गाथा, फिर से। वस्त्र का दृष्टान्त दिया है। **इसी प्रकार....** यहाँ से.... **ज्ञाता भी....** यह तो बीच में भाषा आयी है। जाननेवाला भी.... प्रश्न तो शिष्य का यह था — मुझे सम्यग्दर्शन-ज्ञान तो हुआ है, मैंने जाना है (कि) रागादि पर है परन्तु मुझे अन्दर आत्मा का आचरण कैसे करना? मेरे स्वरूप में आचरण कैसे करना? यह आचरण जो राग का है, उससे मेरे स्वरूप में आचरण कैसे करना? यह प्रश्न था। तो गुरु ने मूल से-पहले से बात की है। आहाहा!

ज्ञाता भी भ्रमवश.... यहाँ से शुरु किया है। **परद्रव्य के भावों को....** ये कर्म के निमित्त से होनेवाले शुभाशुभराग, इन परभावों को अपना जानकर **ग्रहण करके, उन्हें**

अपना जानकर, अपने में एकरूप करके सो रहा है.... इस प्रकार लिया है। यह राग और पुण्य-पाप के भाव अपने में मानकर स्वयं सो रहा है - ऐसे जीव को यहाँ तो लिया है। आहाहा! दूसरी दृष्टि से कहें तो वह पर्यायदृष्टि में पड़ा है। शुभ-अशुभराग, वह मेरा है - ऐसा मानकर अज्ञानी सो रहा है, अर्थात् अज्ञान में पड़ा है। आहाहा! **और अपने आप अज्ञानी हो रहा है;....**

शिष्य ने प्रश्न ऐसा किया था कि मेरे स्वरूप में आचरण कैसे करना? यहाँ पहले से शुरु किया है। आहाहा! वस्तु द्रव्यस्वभाव, शुद्ध वीतरागस्वभाव के साथ राग — दया, दान, काम, क्रोधादि के भाव, वे परभाव हैं। उस त्रिकाली वीतराग स्वभावस्वरूप वे नहीं हैं; इस कारण उन्हें अपना मानकर सो रहा अज्ञानी, जब श्रीगुरु परभावों का विवेक कराकर... कराकर का अर्थ यह भेद कराते हैं, अर्थात् भेदज्ञान कराते हैं। शरीर, वाणी, मन, वे तो पर हैं, उनकी तो यहाँ बात नहीं है, है नहीं। उससे शुभ-अशुभभाव से उसे भेदज्ञान कराते हैं, भाई! शुभ-अशुभभाव तेरी चीज नहीं है।

एक आत्मभावरूप करते हैं.... उससे ऐसा कहते हैं कि तू आत्मा ज्ञानस्वभावस्वरूप है, वह तू। रागादि भाव से-परभाव से उसे विवेक कराते हैं। देखो, यह प्रत्याख्यान और चारित्र की यह दशा! आहाहा! **जब श्री गुरु परभाव का विवेक (भेदज्ञान) करके उसे एक आत्मभावरूप करते हैं....** अर्थात् उसे बतलाते हैं कि भाई! तेरी दृष्टि जो राग और पुण्य-पाप के ऊपर है, वे भाव तेरे नहीं हैं। उनसे तेरी चीज भिन्न एक ज्ञानस्वभावरूप है। अनेक पुण्य और पाप के विकृतभाव से तेरी एकरूप ज्ञानस्वभाव चीज भिन्न है। आहाहा! **और कहते हैं कि 'तू शीघ्र जाग,....'** तुझे यह कहा परन्तु अब शीघ्र जाग! आहाहा! राग और स्वभाव दोनों भिन्न हैं - ऐसे शीघ्र जाग। बहुत धीरज की बातें हैं बापू! आहाहा! **'सावधान हो,....'**

इस शैली से, इस प्रकार बात उठायी है न? आहाहा! यह दृष्टिसहित की स्थिरता उठायी है। आहाहा! भ्रान्ति के त्यागसहित की राग के त्याग की दशा ली है। आहाहा! सूक्ष्म बात है बापू! यह तो समयसार है। यह तो भव के अभाव की बातें हैं प्रभु! आहाहा! भगवान आत्मा का एक ज्ञानस्वभाव, एक आनन्दस्वभाव, एक शान्तस्वभाव, एक

प्रभुत्वस्वभाव - यह सब एकरूप स्वभाव है। इसमें यह पुण्य और पाप के भाव जो अनेकरूप दिखायी देते हैं, वे परभाव हैं; स्वभाव में एकरूपता में वह वस्तु नहीं है। आहाहा! क्या टीका! गजब बात करते हैं न?

वह वास्तव में ज्ञानमात्र है। **'यह तेरा आत्मा वास्तव में एक (ज्ञानमात्र) ही है,....'** आनन्दमात्र; ज्ञान, अर्थात् जाननेवाला ज्ञायकमात्र; आनन्दमात्र, शान्त... शान्त... शान्त... अकषायस्वभावमात्र तेरा आत्मा है प्रभु! आहाहा! एक स्वभावमात्र ही है, ज्ञानमात्र अर्थात् ज्ञानस्वभाव; अकेला ज्ञान आनन्द, शान्ति आदि स्वभावमात्र एकरूप तू है। **'(अन्य सर्व परद्रव्य के भाव हैं), '....** आहाहा! होते हैं अपनी पर्याय में, परन्तु वे द्रव्य के स्वभाव की शाश्वत् चीज वह नहीं है। आहाहा! भगवान ज्ञान और आनन्दस्वभाव में वे भाव नहीं हैं, उस द्रव्य के स्वभावभाव वे नहीं हैं। आहाहा! देखो, चारित्र प्रगट करने की विधि तो देखो! आहाहा!

भगवान! तू तो एक ज्ञान-आनन्दस्वरूप एकरूप है न! ज्ञायकभाव, आनन्दभाव, वीतरागभाव, शान्तस्वभाव, एकरूपभाव (है न)। यह अन्यभाव सब परभाव हैं। आहाहा! **तब बारम्बार कहे गये इस आगम के वाक्य को....** अर्थात् गुरु ने कहा था, वह आगम का वाक्य है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह आगम को कहते हैं; वह घर की बात नहीं है। आहाहा! आगम ऐसा कहता है। गुरु कहते हैं, वह आगम का वाक्य है। आहाहा! भाई! आगम से उसने सुना कि जो यह तेरा स्वरूप है, वह एकरूप है। उसमें अनेकपने के जो विकल्प उत्पन्न होते हैं, वे अन्य के-परद्रव्य के भाव हैं। भाई! तेरी चीज नहीं है। आहाहा!

उस चारित्र अधिकार में आता है न भाई? वहाँ ऐसा आता है — भेद-अभ्यास करने से चारित्र प्रगट होता है। आहाहा! भाई! पीछे-पीछे कलश में आता है, यहाँ इस प्रकार विधि है। आहाहा! आत्मा ज्ञान आनन्द एकरूप वीतरागस्वभाव स्वरूप एकरूप है। उसे आत्मारूप करते और बताते हैं और उसकी पर्याय में जो विकार पुण्य-पाप के रागादि... आहाहा! यहाँ तो महाव्रत का विकल्प उठता है, वह भी परभाव है, राग परभाव है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

उसे आगम का वाक्य ऐसा कहते हैं, उसे आगम ऐसा कहते हैं अर्थात् कोई कहे

कि गुरु ने ऐसा कहा तो सिद्धान्त का उस प्रकार वाक्य है ? कि वह सिद्धान्त का ही वाक्य है। गुरु ने ऐसा कहा और सिद्धान्त भी ऐसा ही कहता है। आहाहा! और देव की तथा सर्वज्ञ की वाणी में भी वही आया है। आहाहा!

प्रभु! तू आनन्द और ज्ञानस्वरूप है न एकदम, आहाहा! तुझे जो यह पुण्य और पाप का भाव-परभाव की तुझे मिठास लगी है, मेरापन मानकर, यह भ्रम हुआ है प्रभु! आहाहा! यहाँ तो भव के अभाव की बातें हैं। हमारे पाटनीजी कहते हैं न कि यहाँ भव के अभाव की बातें हैं, प्रभु! आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञान-आनन्द, वीतरागस्वभाव से एकरूप वस्तु है, उसकी पर्याय में निमित्त के वश हुए जो पुण्य-पाप के भाव (हैं), भगवन्त! वे परभाव हैं; वे तेरा स्वरूप नहीं है। आहाहा!

यह आगम का वाक्य सुन तो गुरु ने कहा परन्तु साथ में आगम में भी ऐसा कहा है, यह सिद्ध करना है - ऐसा कि सिद्धान्त जो सर्वज्ञ का आगम है, वह ऐसा ही कहता है- ऐसा कहते हैं भाई! सर्वज्ञ कथित जो आगम है, अर्थात् सर्वज्ञ से कहा हुआ वह आया, उनकी वाणी में भी आया और गुरु ने भी ऐसा कहा। आहाहा! प्रभु! यह तो मार्ग - अन्दर की बातें हैं, प्रभु!

श्रोता : मार्ग तो अन्तर में ही होता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे पहले ज्ञान तो करना पड़ेगा न प्रभु! आहाहा!

शिष्य ने तो ऐसा कहा था कि मेरा मिथ्यात्व का पटल छूट गया है। जैसे आँख में विकार हो तो वस्तु को दूसरे प्रकार से देखता है, पीलियावाला सफेद को पीली देखता है। इसी प्रकार मेरी दृष्टि में विपरीतता थी, मैं राग को मेरा मानता था, वह विपरीतता अब मिट गयी है। आहाहा! (परन्तु) अब प्रभु मुझे आत्मा का आचरण कैसे हो ? आहाहा! कितने विनय से पूछता है! सम्यग्दृष्टि है, ज्ञानी-अनुभवी है। गुरु के पास, निर्ग्रन्थ सन्त के पास... आहाहा! अरे! सर्वज्ञ के पास भी ऐसा आता है। चारित्र अंगीकार करते हैं, साधु, सर्वज्ञ के पास जाये तो ही चारित्र अंगीकार करते हैं। आहाहा! तो यह तो सुना, आगम का वाक्य तो (सुना), उसका अर्थ यह हुआ कि सर्वज्ञ ने भी यही कहा है और आगम भी यही कहता है। सर्वज्ञ की वाणी, वह आगम है और गुरु, वह आगम का वाक्य इसे कहते हैं।

श्रोता : तीनों एक ही प्रकार कहते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों ऐसा कहते हैं। आहाहा! प्रभु! तुझे तीनों ही ऐसा कहते हैं - देव-गुरु और शास्त्र... आहाहा! कि तेरा भगवान एकस्वरूप है न प्रभु! उसमें अनेकपने के विकल्प-राग, आहाहा! वे सब परभाव हैं न प्रभु! तेरा भाव हो तो कायम रहे। वे तो क्षणिक-नाशवान हैं। आहाहा! उन परभावों से भिन्न करके बतलाते हैं। इसने देखा तो है परन्तु यह तो विशेष स्पष्ट करते हुए पहले से ही शुरुआत की है। आहाहा! प्रवीणभाई! यह सब दूसरे प्रकार की है। तुम्हारे थाने की गद्दी की अपेक्षा यह बातें दूसरी है भगवान! आहाहा! दुनिया का पूरा रस उड़ा देने की बातें हैं। यहाँ तो इसे भगवान आत्मा का रस चढ़ा देना। समझ में आया ? आहाहा! प्रत्याख्यान, अर्थात् चारित्र, अर्थात् राग के अभावस्वरूप परिणमन - इस स्थिति से बतलाते हैं, देखो! आहाहा!

अब ऐसी स्थिति पड़ी है न प्रभु! अन्दर से कुछ का कुछ करते हैं। आहाहा! यह तो सम्यग्दृष्टि सहित है, इसे भी इस प्रकार कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

आगम के वाक्य को सुनता हुआ.... परन्तु वह बारम्बार कहा गया, हाँ! इतना अर्थात् इसने बारम्बार विचार में लिया। ऐसे गुरु ने तो भले एक बार कहा- यह तो ३८ गाथा में आता है न ? गुरु ने बारम्बार कहा ऐसा अन्त में आता है। उसका (अर्थ) बारम्बार गुरु कहाँ फुरसत में थे ? इसने स्वयं ने ही बारम्बार उसका विचार मन्थन चलता है। है न अपने ३८ वीं में, आ गया है। ३८ में आता है, ३८-३८... 'विरक्त गुरु द्वारा निरन्तर समझाये जाने पर....' ऐसी भाषा है; निरन्तर, निरन्तर.... गुरु फुरसत में हैं ? इसका अर्थ ही यह (कि) महा निर्ग्रन्थ वीतरागी मुनि-सन्त आनन्द में झूलनेवाले, आहाहा! धर्मपिता, धर्मगुरु, वे इसे निरन्तर... विरक्त गुरु, विरक्त गुरु का अर्थ निर्ग्रन्थ गुरु।

श्रोता : रागरहित।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग से रहित हो गये हैं और स्वरूप में रक्त, रक्त हो गये हैं। राग से विरक्त हैं और स्वरूप में रक्त हैं। आहाहा! ऐसे गुरु द्वारा निरन्तर समझाये जाने पर... निरन्तर का अर्थ कि इसने गुरु का वाक्य ऐसे का ऐसा घोलन में धुन लग गयी। आगम का वाक्य सुनते हुए धुन लग गयी, धुन। आहाहा! राग से भिन्न... राग से भिन्न...

राग से भिन्न... राग से भिन्न... आहाहा! ऐसे निरन्तर अन्तर में भिन्न की धुन लग गयी। आहाहा! अरे! अब ऐसी बातें!

इसी प्रकार यहाँ आगम का वाक्य बारम्बार कहा हुआ - ऐसा लेना, उसका अर्थ यह। आहाहा! जब कहे तब यही कहे - ऐसा उसका अर्थ है - दूसरे प्रकार से कहें तो। समझ में आया? बारम्बार का अर्थ? जब गुरु कहे आगम का वाक्य, तब यही कहे। किसी समय कुछ और किसी समय कुछ - ऐसा नहीं। आहाहा! **तब बारम्बार कहे गये इस आगम के वाक्य....** क्या गम्भीर टीका! गजब बात! अभी भरतखण्ड में ऐसी टीका कोई है नहीं। साक्षात् सर्वज्ञ भगवान की वाणी सीधी रखी है। आहाहा! जिसने सर्वज्ञ का विरह भुला दिया है। आहाहा!

कहते हैं **बारम्बार कहे गये इस आगम के वाक्य को सुनता हुआ वह, समस्त (स्व-पर के) चिह्नों से भलीभाँति परीक्षा करके,....** स्व-पर के चिह्नों से — मेरा लक्षण तो ज्ञान (स्वभाव है), राग का लक्षण तो बन्ध स्वभाव है। मेरा स्वरूप तो अबन्धस्वरूप है, और यह राग है, वह बन्धस्वरूप है। मेरा स्वरूप तो अहिंसक वीतरागी दशा है, यह स्वरूप तो - राग तो हिंसक दशा है। आहाहा! इस प्रकार दोनों की बारम्बार परीक्षा करके, ओहोहो! **(स्व-पर के) चिह्नों से....** चिह्न अर्थात् लक्षण। मेरा भगवान ज्ञानलक्षण, आनन्द लक्षण। आहाहा! ज्ञानलक्षण क्यों कहा मुख्यरूप से? कि ज्ञान की पर्याय प्रगट है न, इस अपेक्षा से ज्ञान पूरा स्वरूप है - ऐसा वहाँ से कहा है। अज्ञानी को आनन्द की पर्याय प्रगट नहीं है। आहाहा! इसलिए ज्ञानलक्षण से और उसके साथ आनन्द की पर्याय से लक्ष्य से आत्मा को पकड़ा है। आहाहा! समझ में आया?

भलीभाँति परीक्षा करके,.... ऐसा का ऐसा मानकर नहीं - ऐसा कहते हैं। गुरु ने कहा, इसलिए ऐसा का ऐसा मान लिया - ऐसा भी नहीं। स्वयं स्वतः परीक्षा की है, आहाहा! समझ में आया? गुरु ने कहा कि प्रभु! तेरा आत्मा तो अन्दर वीतरागमूर्ति एकस्वरूपी है न! त्रिकाल एकस्वरूपी प्रभु है, एक स्वभावी है, उसमें यह अनेकपने के विकल्प और विकार, वह तो परद्रव्य के भाव हैं, उनसे भेदज्ञान कराकर और आत्मा ज्ञानस्वरूप है - ऐसा उसे बताया। समझ में आया? आहाहा! अरे! स्व-पर के चिह्नों से-

भगवान आत्मा का लक्षण और रागादि के लक्षण दोनों की भलीभाँति परीक्षा करके, आहाहा! भगवान अनाकुल आनन्दस्वरूप और यह राग, आकुलता / दु:खस्वरूप-ऐसे दोनों की भिन्न लक्षणों से परीक्षा करके, आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का! '**अवश्य यह परभाव ही हैं,....**' अवश्य मेरा लक्षण ज्ञान और आनन्द और वीतरागस्वरूपी प्रभु मैं हूँ। आहाहा! अत: अवश्य मेरे स्वभाव के लक्षण से इस राग के लक्षण और चिह्न अत्यन्त भिन्न है। आहाहा !वह तो आकुलता उत्पन्न करानेवाला और भगवान तो अनाकुल आनन्दस्वरूप है - ऐसे दोनों को भलीभाँति, परभाव को भलीभाँति जानकर... आहाहा! ज्ञान और आनन्दस्वभाव में यह रागादिस्वभाव भिन्न है, परभाव है; इस प्रकार दोनों के भिन्न लक्षण जानकर '**अवश्य यह परभाव ही हैं,....**' राग आदि परभाव है। आहाहा!

'**(मैं एक ज्ञानमात्र ही हूँ)**'.... आहाहा! मूल तो ज्ञान शब्द से पूरा आत्मा। पूर्णानन्द का नाथ वीतरागस्वरूपी प्रभु मैं तो एक स्वरूप हूँ। आहाहा! **यह जानकर, ज्ञानी होता हुआ,.....** अर्थात् परभाव और परभाव का जाननेवाला होता हुआ, आहाहा! स्वभाव और स्वभाव का जाननेवाला होता हुआ। आहाहा! क्या टीका! क्या टीका! गजब बात भाई! आहाहा! इसका एक-एक श्लोक, सन्तों की वाणी-दिगम्बर सन्तों की यह वाणी है, भाई! आहाहा! वे ऐसा कहते हैं कि प्रत्याख्यान कब होता है ? राग का अभाव कब होता है ? कि स्वभाव में राग नहीं है, वह राग परभावस्वरूप है - ऐसा जानकर, अपना स्वभाव ज्ञान एकरूप है - ऐसा चिह्न से जानकर उस ज्ञानरूप में स्थिर होता है, वहाँ से हटकर स्वभाव में स्थिर होता है, उसे चारित्र और प्रत्याख्यान होता है। आहाहा! यह कोई विद्वतता की चीज नहीं कि बहुत पढ़ गया और बहुत वाँचन कर लिया, इसलिए उसे यह (स्वानुभूति) हो जाये। आहाहा! कहो, इसका नाम चारित्र और प्रत्याख्यान है। आहाहा! **यह जानकर, ज्ञानी होता हुआ,....** सम्यग्दृष्टिरूप से ज्ञानी तो था परन्तु यहाँ अब ज्ञानी होता हुआ, अर्थात् ज्ञानस्वभाव में स्थिर होता हुआ, आहाहा! **सर्व परभावों को तत्काल छोड़ देता है।** आहाहा! धन्य काल! आहाहा! उन परभावों को परभावरूप से जानकर, अपने आनन्द-ज्ञानस्वभाव को स्वभावरूप से जानकर और ज्ञानी, अर्थात् स्वरूप में स्थिर होता हुआ... ज्ञानी, अर्थात् ज्ञानस्वभाव में स्थिर होता हुआ... आहाहा! **सर्व परभावों को तत्काल छोड़ देता है।** ऐसा निमित्त से कथन है, वरना छोड़ता है - ऐसा नहीं, छूट जाते

हैं। आहाहा! स्वरूप में ज्ञानी स्थिरता करता हुआ, उसे राग का परिणाम जो पर्याय में था, वह उत्पन्न नहीं हुआ, वह स्वरूप में स्थिर हुआ, उसने परभाव का त्याग किया - ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा!

अरे! ऐसी बातें प्रभु! मीठी-मधुरी आनन्ददायक बात है प्रभु! आहाहा! भले ही कर न सके परन्तु वस्तु ऐसी है; इस प्रकार उसका पहले सम्यग्दर्शन तो करे।

श्रोता : श्रद्धा तो करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा तो करे।

श्रोता : ऐसा है ऐसी श्रद्धा तो करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे कहाँ जाना भाई! परभाव को अपना मानकर प्रभु, इसे कहाँ जाना है? इसे अचारित्र और अज्ञानभाव से चार गति में भटकना है। आहाहा! अनजाने क्षेत्र में, अनजाने द्रव्य में जाकर इसे भटकना है। आहाहा! परिचित भगवान को इसने छोड़ दिया। आहाहा!

इसने यह तो परिचित भगवान को जान लिया, जान लिया, तदुपरान्त राग को पर जानकर, स्वयं ज्ञानी हुआ तो स्थिर हुआ। आहाहा! यह चारित्र। कहो छोटाभाई! ऐसी बात है भाई! आहाहा! क्या टीका! क्या उसके कहे हुए वाच्य! वह ऐसा जानकर, ज्ञानी होता हुआ, अर्थात् ज्ञानस्वरूप में स्थिर होता हुआ, जो अस्थिरता में था, उसे पर जानकर अपने में स्थिर होता हुआ... आहाहा! वह चारित्र को प्राप्त करता है, वह प्रत्याख्यान को प्राप्त करता है, यह विधि! कहो, गोविन्दरामजी! आहाहा! अरे! ऐसे स्वरूप को विकृत कर डालना और जगत को बतलाना कि यह भी चारित्र है, भाई! आत्मा को दुःख होगा भाई! आहाहा! और उसके दुःख के परिणाम में भविष्य में भी कुछ गति होगी। आहाहा! उसका विचार कर प्रभु! आहाहा! और भ्रम छोड़कर स्वरूप में स्थिर हो, उसे यहाँ प्रत्याख्यान कहते हैं। आहाहा! भाषा-टीका तो वैसे सादी है, भाव बहुत गम्भीर है। आहाहा!

ज्ञानी होता हुआ अर्थात्? मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, यह तो जाना था परन्तु अब ज्ञानस्वरूप में स्थिर होता हुआ, ज्ञानी होता हुआ। वह रागी होता हुआ जो अस्थिरता का भाव था, आहाहा! उसे छोड़कर; ज्ञानी स्वरूप में-ज्ञानस्वरूप में स्थिर होता हुआ आहाहा! पर को

छोड़ता है – ऐसा कहा जाता है। आहाहा! इसका नाम प्रत्याख्यान! यह पचक्खाण और प्रत्याख्यान, व्रत और नियम करते हैं न? व्रत का प्रतिज्ञा दो परन्तु बापू! यह व्रत अर्थात् क्या? यह पचक्खाण अर्थात् क्या? भाई! समझ में आया? आहाहा!

यह बाह्य से है, वह तो विकल्प-शुभराग है, वह कोई प्रत्याख्यान नहीं है। आहाहा! प्रत्याख्यान तो भगवान पूर्णानन्द प्रभु! एक स्वरूपी – ऐसी दृष्टि हुई और उसमें परभाव की अनेकता पररूप है – ऐसा जानकर वहाँ से हट गया और इस शुद्धात्मा में लीन हुआ, उसे यहाँ प्रत्याख्यान / पचक्खाण, राग के त्याग की दशा... आहाहा! ऐसा कहा जाता है। बहुत बात... आहाहा!

भावार्थ : जब तक परवस्तु को भूल से अपनी समझता है.... पहले से शुरु किया है न? **तभी तक ममत्व रहता है....** आहा! अपनी जानता है, इसलिए ममत्व ही रहता है, यह मेरी है ऐसा। आहाहा! **और जब यथार्थ ज्ञान होने से परवस्तु को दूसरे की जानता है....** आहाहा! उस कोट को भी पर का जानता है, उसके लक्षण से (जानता है), छोड़ देता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा शुभ-अशुभभाव के परभाव को जाने और अपना स्वभाव वीतरागी ज्ञान-आनन्दस्वरूप जाने, **तब दूसरे की वस्तु में ममत्व कैसे रहेगा?....** यह पुण्य और पाप में अस्थिरता कैसे रहे – ऐसा कहते हैं। आहाहा! **अर्थात् नहीं रहे, यह प्रसिद्ध है।** आहाहा!

कलश - २९

अब, इसी अर्थ का सूचक कलशरूप काव्य कहते हैं —

(मालिनी)

अवतरति न यावद् वृत्तिमत्यंतवेगा-
दनवमपरभावत्यागदृष्टांतदृष्टिः।
झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता
स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव॥२९॥

श्लोकार्थ : [अपर-भाव-त्याग-दृष्टान्त-दृष्टिः] यह परभाव के त्याग के दृष्टान्त की दृष्टि, [अनवम् अत्यन्त-वेगात्-यावत् वृत्तिम् न अवतरित] पुरानी न हो इस प्रकार अत्यन्त वेग से जब तक प्रवृत्ति को प्राप्त न हो, [तावत्] उससे पूर्व ही [झटिति] तत्काल [सकल-भावैः अन्यदीयैः विमुक्ता] सकल अन्यभावों से रहित [स्वयम् इयम् अनुभूतिः] स्वयं ही यह अनुभूति तो, [आविर्बभूव] प्रगट हो जाती है।

भावार्थ : यह परभाव के त्याग का दृष्टान्त कहा, उस पर दृष्टि पड़े उससे पूर्व, समस्त अन्य भावों से रहित अपने स्वरूप का अनुभव तो तत्काल हो गया; क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि वस्तु को पर की जान लेने के बाद ममत्व नहीं रहता।

कलश - २९ पर प्रवचन

अब, इसी अर्थ का सूचक कलशरूप काव्य कहते हैं — २९ (वाँ कलश)

अवतरति न यावद् वृत्तिमत्यंतवेगा-
दनवमपरभावत्यागदृष्टांतदृष्टिः।
झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता
स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव ॥२९॥

आहाहा! **'अपर-भाव-त्याग-दृष्टान्त-दृष्टिः' यह परभाव के त्याग के दृष्टान्त की दृष्टि, 'अनवम् अत्यन्त-वेगात्-यावत् वृत्तिम् न अवतरित'....** यह परभाव की दृष्टि जहाँ है, कहते हैं कि प्रगट हुई वहाँ वह **पुरानी न हो इस प्रकार अत्यन्त वेग से जब तक प्रवृत्ति को प्राप्त न हो,....** अरे! राग को पावे ही नहीं। आहाहा! सुना कि रागादि पर है, यह वस्त्र के दृष्टान्त आदि से। यह दृष्टान्त जहाँ सुना, वहाँ तुरन्त ही राग की प्रवृत्ति में नहीं रहे। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि यह सुना और **अत्यन्त वेग से....** प्रवृत्ति को प्राप्त न हो, **उससे पूर्व ही तत्काल....** राग की प्रवृत्ति को प्राप्त नहीं हो - दृष्टान्त दिया कि भाई! रागादि पर है, ऐसा जो दृष्टान्त कहा, उस दृष्टि को प्राप्त न हो, अर्थात् प्रवृत्ति को प्राप्त न हो, वहाँ एकदम अन्दर स्थिर हो गया। आहाहा!

परभाव के त्याग के दृष्टान्त की दृष्टि, पुरानी न हो.... अर्थात् ऐसी ताजा रहे।

सुनने के साथ एकदम अन्दर स्थिर हो गया। आहाहा! उसे देर लगे, सुनने की चीज को और पृथक् पड़ने में देरी लगे, ऐसा नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या सन्तों की वाणी तो देखो! कहते हैं कि उसे जहाँ ऐसा दृष्टान्त दिया कि भाई! यह वस्त्र जो पर का है, उसके चिह्न जाने और उसने सुना, वहाँ वह बात उससे छूट गयी, तुरन्त ही छूट गयी। इसी प्रकार भगवान आत्मा में शुभाशुभभाव दृष्टान्त की दृष्टि की अपेक्षा बात की, वह बात पुरानी न हो, अर्थात् उस बात को देर न लगे। आहाहा!

पाँचवीं गाथा में कहा है न कि मैं एकत्व-विभक्त को तुझे कहूँगा प्रभु! परन्तु यदि दिखाऊँ तो प्रभु! प्रमाण करना, हों! आहाहा! '**जदि दाएज्ज**' यदि मैं दिखाऊँ - राग से विभक्त, स्वभाव से एकत्व तो - यह बात दिखाऊँ तो प्रभु, हाँ करना, इतना ही नहीं कहा। आहाहा! ऐसा है या नहीं? कहते हैं, उस अनुसार है या नहीं? - उसका प्रमाण अनुभव से करना। आहाहा! यहाँ यह कहा कि इस दृष्टान्त की दृष्टि जहाँ पुरानी न पड़े और देर न लगे... लोग नहीं कहते, तुम्हारे आने से पहले ही यह काम हो गया। यह तू आया, यह काम हुआ, तू आया। उससे पहले ही हो गया, पहले नहीं, परन्तु वह आया तब हुआ - परन्तु आया उससे पहले हो गया - ऐसा कहते हैं न? आहाहा! तुम्हारा काम था भाई! परन्तु तुम्हारे आने से पहले तुम आये, साथ में हो गया, तो आने से पहले हो गया - ऐसा। हुआ है तो तब।

श्रोता : समय भेद नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समय भेद नहीं है। आहाहा!

इसी प्रकार जहाँ भगवान सन्तों ने आगम से, सर्वज्ञ के आगम से और सन्तों ने स्वयं कहकर कहा उसे यह... आहाहा! कि प्रभु! परभाव से तेरी चीज तो भिन्न है और तेरी चीज से परभाव भिन्न है। आहाहा! ऐसा जहाँ सुनने में आया और वह बात पुरानी न रहे, अर्थात् देर न लगे। आहाहा! क्या वाणी! दिगम्बर सन्तों की शैली तो देखो, आहाहा! प्रभु! वहाँ तो तू सुख के धाम में अन्दर पौड़ गया, कहते हैं। आनन्द के नाथ में अन्दर चला गया, कहते हैं। तुझे कहा कि राग भिन्न-राग परभाव है, यह बात पुरानी न हो, वहाँ तो तू पर से भिन्न पड़ गया। आहाहा! (यत्क्षणं दृश्यते शुद्ध तत्क्षणं गतविभ्रमः)

यह तीन लोक के नाथ क्या करते होंगे, दिव्यध्वनि द्वारा, वह कैसी होगी ? जहाँ तीन ज्ञान के धनी इन्द्र एकावतारी भी जिनकी बात सुनकर डोलते हैं, आहाहा ! साक्षात् प्रभु तो विराजते हैं, वहाँ आहाहा ! ऐसी यह टीका, गजब टीका है। साक्षात् आगम वाणी-सर्वज्ञ की वाणी - गुरु की वाणी ! आहाहा ! इस आगम के नाम से, जो तुझे राग से लाभ होता है - ऐसा कहते हैं, वह आगम ही नहीं है, वे गुरु नहीं है और उस देव ने ऐसा कहा नहीं है। आहाहा ! आगम-गुरु और देव ने ऐसा कहा प्रभु, कि जो परभाव है, उससे तू भिन्न पड़ तो तुझे लाभ होगा, तो एकपने का लाभ होगा। इस प्रकार आगम के वाक्य, गुरु के वाक्य, वीतराग के वाक्य यह हैं। आहाहा ! क्योंकि वीतराग की वाणी और गुरु की वाणी में वीतरागता प्रगट करने की बात है। आहाहा ! अतः वीतरागता कैसे प्रगट हो ? - कि राग को पररूप से जानकर स्वरूप में स्थिर हो, तब वीतरागता प्रगट होती है - यह बात वीतराग ने कही है और आगम ने यह कही है। आहाहा ! इसलिए कोई ऐसा कहे कि प्रत्याख्यान की विधि यह है - तो वह आगम का वाक्य है, गुरु का वाक्य है, और वीतराग का कथन है ? कि यह कथन वीतराग का है। आहाहा ! दूसरा कोई ऐसा कहे कि यह प्रत्याख्यान ऐसा किया और राग ऐसा किया और राग है, विकल्प है, वह त्याग है - तो वह वीतराग की वाणी नहीं, वह गुरु की वाणी नहीं, सर्वज्ञ का वह कथन नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

साधारण प्राणी को कठिन लगता है परन्तु मार्ग तो यह है बापू ! आहाहा ! भगवन्त तेरा स्वरूप ही ऐसा है। यह तो आया था न पहले 'भगवत् ज्ञातृद्रव्य' भगवान ज्ञाताद्रव्य जाननद्रव्य, ज्ञाताद्रव्य, आहाहा ! वह ज्ञाता को ज्ञातारूप से जानकर, राग के विकल्प की वृत्तियों को परभावरूप से जानकर, उसमें नहीं प्रवर्तकर और उन्हें छोड़कर स्वरूप में प्रवर्तता है, उसे प्रत्याख्यान और राग के त्यागरूप भाव कहने में आता है। आहाहा ! कितनी शर्तें !

श्रोता : एक ही शर्त.....

पूज्य गुरुदेवश्री : तू दूसरे प्रकार से माने कि हमने यह व्रत लिये और तप किया, इसलिए यह संवर-निर्जरा है, यह चारित्र है... भगवान ! ऐसा नहीं है भाई ! आहाहा ! भगवान ने ऐसा नहीं कहा और आगम का यह वाक्य नहीं है, गुरु ने ऐसा उपदेश दिया नहीं है। आहाहा !

पुरानी न हो (दृष्टि) इस प्रकार अत्यन्त वेग से जब तक प्रवृत्ति को प्राप्त न हो,.... रागरूप परिणमे नहीं, उससे पहले आता है और उसे दूर से छोड़कर... स्तुति में आया था, उदय की ओर का अनुसरण है, उसे इस प्रकार दूर से छोड़कर अर्थात् ऐसा अनुसरण नहीं करता और ऐसे अनुसरण करता है - स्व के आश्रय का अनुसरण करता है। आहाहा! यह उसकी अभी ज्ञान और श्रद्धा तो करे कि मार्ग यह है। ऐसे का ऐसा मानकर बैठ जाये, बापू! प्रभु! तुझे लाभ नहीं होगा। तू माने और दुनिया माने अर्थात् लोग सर्टीफिकेट दें कि तुम गजब मुनि... भाई! ऐसा नहीं होता। आहाहा!

'अनवम् अत्यन्त-वेगात्' यह कान में शब्दों की दृष्टि पड़ी, वह पुरानी न हो, तुरन्त ही अन्दर राग से भिन्न भगवान अन्दर जाग उठा... आहाहा! अन्दर में भनकार बजे। ज्ञाताद्रव्य चैतन्य-सिन्धु, यह चैतन्य-सिन्धु हमारा रूप है; रागादि हमारा रूप नहीं है। आहाहा! **उससे पूर्व ही.... तत्काल 'झटिति'.....** है न? **'सकल-भावैः अन्यदीयैः विमुक्ता' सकल अन्यभावों से रहित,....** कहते हैं कि रागादि परभाव हैं, उनके लक्षण भिन्न हैं, तेरे स्वभाव के लक्षण भिन्न हैं - ऐसी जहाँ दृष्टि जहाँ कान में पड़ी-यह दृष्टान्त कान में पड़ा-कान में पड़ा और पुराना न हो, वहाँ तो तुरन्त ही राग से भिन्न पड़ गया, भगवान... आहाहा!

सकल अन्यभावों से रहित.... देखा! शुभाशुभभाव विकार है। आहाहा! अन्य भाव है। **सकल अन्य भावों से रहित....** आहाहा! तत्काल **स्वयं ही यह अनुभूति तो, प्रगट हो जाती है।** आहाहा! सम्यग्दर्शन की अनुभूति तो थी ही परन्तु यह चारित्र की अनुभूति प्रगट हुई। आहाहा! भगवान शुद्ध चैतन्यमूर्ति को अनुसरण करके अनुभूति हुई, जो निमित्त को अनुसरण करके राग होता था, उसे ऐसा कहा कि यह राग लक्षण तो पर है और तेरा स्वरूप पर है - यह बात जहाँ कान में पड़ी और पुरानी न हो 'अनवम्', पुरानी न हो, ताजा रहे, वह पृथक् पड़ गया। आहाहा!

कहते हैं वहाँ स्वयं ही अनुभूति तो प्रगट हो गयी है। **'स्वयम् इयम् अनुभूतिः'** अर्थात्? रागरूप नहीं हुआ, इसलिए ऐसा हुआ ऐसा है? वह तो स्वयं अनुभूति प्रगट हो गयी है। रागरूप नहीं हुआ वह तो फिर अपेक्षा हो गयी। आहाहा! आहाहा! अन्दर भगवान

आनन्द के नाथ की वीणा बजी। वह अनुभूति, स्वस्वभाव को अनुसरण करके परस्वभाव की प्रवृत्ति से परिणमने से पहले, अर्थात् वह परिणमा नहीं, उससे पहले यह (अनुभूति) हो गयी - ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह समयसार तो भरतक्षेत्र में साक्षात् केवलज्ञान का सूर्य है, अजोड़ चक्षु है। आहाहा! भाई! इसे समझना अलौकिक बात है। आहाहा!

अन्यभावों से रहित, दृष्टान्त सुने और पुराना न हो, वहीं, पहले फिर ऐसा पहले का अर्थ तत्काल। आहाहा! आनन्द का नाथ भगवान ऐसा मैं, परभावरूप नहीं होऊँ, मेरा स्वभाव स्वभावरूप हो, परभावरूप न हो - ऐसा अन्तर जानकर जहाँ स्वभावरूप स्थिर हुआ, तब अनुभूति तुरन्त ही प्रगट हो गयी। आनन्द का अनुभव, प्रत्याख्यान अर्थात् चारित्र, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव प्रगट हो गया। उसे यहाँ प्रत्याख्यान और चारित्र कहते हैं। आहाहा!

अरेरे! लोगों को कठिन पड़ता है। वे लोग ऐसा कहते हैं कि इस पाठ में तो इतना भरा है और ऐसा अर्थ कहाँ से? कितने ही ऐसा कहते हैं। अरे प्रभु! ऐसा कि यहाँ तो इतना कहा है **जह णाम कोवि पुरिसो परदव्वमिणं ति जाणिदुं चयदि। तह सव्वे परभावे णाऊण विमुञ्चदे णाणी॥** सर्व परभावों को छोड़ा है, उसमें इतनी बात में लम्बी-लम्बी बातें... बापू! उसमें कहे हुए भावों की गम्भीरता का यह अर्थ है। कितने ही लोग ऐसी आलोचना करते हैं न? भाषा तो सरल है, उसमें इतनी सब गम्भीरता निकालकर टीकाकारों ने विद्वानों ने (दुरुह कर दिया है)। अरे भगवान! ऐसा रहने दे प्रभु! तू ऐसा करना (छोड़ दे) आहाहा! उसमें ही यह आया **जह णाम कोवि पुरिसो परदव्वमिणं ति जाणिदुं** परद्रव्य है - ऐसा जाना चयदि। तो आ गया न अन्दर में, यह तो उसका स्पष्टीकरण है। आहाहा! पुण्य-पापभाव-विकारभाव वह सब परद्रव्य है, परभाव है - ऐसा जाना, वहाँ मेरा स्वभाव नहीं तो वहाँ परिणम जाता है तो राग को यद्यपि ऐसे छोड़ता है - ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

बापू! ये तो वीतराग का पन्थ है नाथ! इसमें कोई राग का रस इसमें है नहीं। आहाहा! आहाहा! वह कहते हैं कि यह शब्द थोड़े हैं और साधारण, उसमें बड़ी-बड़ी

लम्बी बातें कि परभाव को परभाव जाना, रागादि को.... स्वयं को स्वयं जाना और उस रागरूप नहीं हुआ और वीतरागरूप हुआ – यह तो उसका स्पष्टीकरण है प्रभु! तू ऐसा मत कर, भाई! उसका स्पष्टीकरण किया तो कहता है गहरा कर डाला, गूढ़ कर डाला। अरे भगवान! उसमें जो था, उसे खोलकर स्पष्ट किया है। आहाहा!

अमृतचन्द्राचार्य भगवान स्वरूप (पंच) परमेष्ठी में आचार्य पद पर हैं। आहाहा! भाई! इस गाथा के भाव में बहुत गम्भीरता थी, उसे टीका करके स्पष्ट कर दिया है। टीका अर्थात् नहीं कहते कि मेरी टीका करता है। उसमें जो था, उसकी टीका की है, विस्तार किया है, स्पष्ट किया है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु इसमें ऐसा प्रत्याख्यान महँगा लगता है न, इसलिए ऐसा कहते हैं कि ऐसी टीका करके प्रत्याख्यान ऐसा कर डाला। करे क्या भाई! भगवन्त! तेरी चारित्रदशा ऐसी होगी, तब मुक्ति होगी। तू ऐसा जाने कि खा-पीकर लहर करें और हो... सम्यग्दर्शन अकेला हो और ज्ञान हो तो भी मुक्ति नहीं होगी। आहाहा! उसे इस प्रकार चारित्र की परिणति प्रगट करेगा, आहाहा! तब वह मुक्ति का कारण होगी। समझ में आया? आहाहा! उसके लिए कहा न अन्त का, अन्तिम शब्द था न, ३४ में 'इसलिए प्रत्याख्यान ज्ञान ही है।' टीका (गाथा) ३४ में था न – ऐसा अनुभव, ऐसा करना, है न? ३४ की अन्तिम लाईन। इसलिए प्रत्याख्यान ज्ञान ही है – ऐसा अनुभव करना, ३५ में यह लिया कि 'स्वयं ही अनुभूति तो प्रगट हो गयी' आहाहा! है न अन्तिम शब्द ३४ का, वह यहाँ अनुभूति करके कहा। आहाहा!

भाई! कठिन लगे... यह तो अपूर्व बातें हैं प्रभु! कठिन शब्द न करके यह अपूर्व है, कभी किया नहीं – ऐसी अपूर्व बात है, भाई! आहाहा! इस कारण तुझे कठिन लगे परन्तु है अपूर्व प्रभु! पूर्व में अनन्त काल में एक सैकेण्डमात्र भी नहीं किया। आहाहा! यह तो दृष्टान्त कहकर कहा कि यह दृष्टान्त कहा है, वहाँ सुनने से पहले तो पृथक् हो गया – ऐसा कहा है, ऐसा कर डाला अर्थात् इसका अर्थ कि दृष्टान्त सुना, इसलिए पृथक् पड़ा – ऐसा नहीं है। आहाहा!

इसका भावार्थ आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)